जनवादी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन सत्य

प्रा. अरविंद दाजी घुडे
ड़ाकघर – उंबरपाड़ा, पो. सरलगांव,
तहसिल – मुरबाड, जिला – थाना
पिन – ४२१४०१

जनवादी कविता : अर्थ एवं स्वरूप –

जनवादी कविता का तात्पर्य है– जनवादी विचारधारा से प्रभावित कविता । जनवादी प्रवृत्ति किसी भी साहित्य की विषयगत तथा भावगत विशेषता है, जो सामाजिक व्यवस्था का चित्रण करती हुई मार्क्सवादी दर्शन के प्रभाव से, प्रमुख रूप से वर्ग–सम्बन्धी तथा तत् सम्बन्धी समस्याओं का चित्रण करती है।

जनवादी कवि की सबसे बड़ी विशेषता है– उसका जन से जुड़ाव। जनवादी कवि सीधे सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ता है। इसलिए उसकी कविता एक ऐसी साहसी रचनाप्रवृत्ति है जो हर युग में अपने चुनौती भरे अस्तित्व की विशिष्टता से पहचाना जाता है।

समाज में जो कुछ भी समाज के कल्याण के लिए है, उसका सम्बन्ध जनवादी साहित्य से है और जो कुछ भी अकल्याणकारी है और जो आदमी को शोषण, दमन और अन्याय के घेरे में बाँधता है उसके विरूद्ध आवाज़ उठाने का कार्य जनवादी कविता करती है। जनवादी कविता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ. इन्द्र बहादुर सिंह ने लिखा है–''जनवादी कविता सम्पूर्ण अवधारणा है, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध पहलुओं का समावेश होता है। इसे सफल बनाने के लिए मूल्यों के स्तर पर हमें आर्थिक क्षेत्र में नियतिवाद और अन्धाधुन्ध शोषण–उत्पीड़न के विरूद्ध विकास के समुचित अवसरों के अधिकार और मनुश्य की संघर्षशीलता तथा सामर्थ्य की मान्यता, सामाजिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक–जातीय उत्पीड़न के विरूद्ध, नारी–मुक्ति, अन्धविश्वासों के विरूद्ध बौद्धिक तर्कसंगत दृष्टि के विस्तार, भाशा और प्रादेशिकता की संकीर्णता के विरूद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण, संकीर्ण राष्ट्रवाद के स्थान पर उदात्त मानवीय मूल्यों तथा राजनीति के क्षेत्र में निरंकुषतंत्र तथा श्रमजीवी जनता के संघर्षो के बर्बर दमन के विरोध में अभिव्यक्ति और आन्दोलन की स्वतंत्रता तथा मौलिक अधिकारों एवम् नागरिक स्वाधीनताओं की सुरक्षा के जनवादी मूल्यों का पोषण–परिवर्द्धन करना होगा। ये मूल्य अपनी प्रकृति में नकारात्मक न होकर सकारात्मक है।''[१]

डॉ. शिवकुमार मिश्र ने जनवादी कविता को रेखांकित करते हुए कहा है– ''युग की प्रगतिशील चेतना को आत्मसात् करते हुए, मनुष्य के भावजगत् तथा सौन्दर्यबोध को गहराई में जाकर स्पर्श करने तथा उद्घाटित करनेवाली रचना ही सही अर्थों में जनवादी रचना की अधिकारिणी होती है।''[२]

निष्कर्षत: कहा जाता है कि– ''स्वातंत्रोत्तर भारत के इतिहास को देखने से पता चलता है कि आदमी की मुसीबत का मुख्य कारण–राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था है। यानी अपने समाज की संरचना वैषम्यमूलक, मुद्रापरक, संग्रहशील, उच्च वर्गोन्मुख और अलगाव की प्रोत्साहक है। यह सामाजिक, राजनैतिक जनतंत्र बड़े लोगों के लिए एक सुखद संस्था है। इस पूँजीवादी जनतंत्र का अर्थ है– 'अल्पतंत्र'। इस सरंचना तथा ढाँचे को तोड़ने वाली कविता ही जनवादी कविता है। जनवादी कविता की समकालीनता वस्तुत: स्थितियों, व्यक्तियों और शक्तियों के क्रूर विश्लेशण में है। असत्य, दम्भ, षडयंत्र, सनक और भोगविलास के ऊपर जो लोग और वर्ग शान्ति, जनतंत्र, परिष्कृति, प्रयोग, आधुनिकता

अथवा अन्य मुखौटे लगाते है, जिससे सही स्थिति सामने आ जाए और परिवर्तन के सही पक्षधरों को कोई भ्रम न रहे कि कौन अपना है और कौन यथास्थितिवादी। इस दृष्टि से मूल्यहीनता का अभ्यास नहीं, चारों ओर फैली हुई मूल्यहीनता का बेलाग साक्षात्कार करना और स्वयं मूल्यवान जीवन जीना ही जनवादी समकालीनता है और इसी की कलात्मक अभिव्यक्ति है जनवादी कविता।''[३]

जनवादी कवि परेशान है; क्योंकि देश टूट रहा है, समाज बिखर रहा है, साम्प्रदायिकता का विकराल दानव हमें अपनी आदमखोर बाँहो में समेटे जा रहा है। दीवारों पर लिखा है— 'भारत हिन्दू राष्ट्र है।' 'कसम राम की खाते हैं, मन्दिर वहीं बनाएँगे', स्वतंत्र कश्मीर की माँग, भारत से अलग स्वतंत्र खालिस्तान की अवधारणा, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोराम, नागालैण्ड की अलगाववादी प्रवृत्तियाँ, मुसलमानों की फिरकापरस्ती, बढ़ता हुआ धर्मान्तरण, सवर्णो और पिछड़े वर्गो का आपसी संघर्ष, राजनीतिज्ञों द्वारा कुर्सी के लिए अपने दिल—दिमाग के ज़हर को जनमानस का हिस्सा बनाने की कोशिश, 'हिन्दू राश्ट्र' की जिस अवधारण को पहले सिर्फ प्रचारित किया जाता था, अब बाबरी मस्जिद की जगह राम मंदिर बनाने के सशस्त्र अभियान की घोशण द्वारा, असे असली जामा पहनाने के प्रयास, अटलबिहारी वाजपेयी जैसे उदारवादी नेता द्वारा रामजन्मभूमि के लिए 'महासागर' की बात, आडवाणी की धर्म—निरपेक्षता पर पुनर्विचार की माँग आदि राष्ट्रीय आन्दोलन की विरासत, धर्मनिरपेक्षता, कबीर, नानक, तुलसी, रविदास, तुकाराम, नज़ीर अकबराबादी, प्रेमचन्द्र, निराला, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, नागार्जुन आदि की मानवतावादी परम्परा और हमारे संवैधानिक आधार को ही चुनौती दे रहे है। जनवादी कवि इन्हीं सब समस्याओं को जीवन—सत्य के रूप में मानता है और अपनी कविताओं के माध्यम से जन—जन तक पहुँचाता है।

जनवादी कविता में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन—सत्य :

''जनवादी कविता कोई बैठे—ठाले का धंधा, आयातित विचारों की पिटारी, आरोपित मुद्राओं की नुमाइश या कि अपने का अपने से ही एकालाप भी नहीं, वह एक सामाजिक तथा सांस्कृतिक कर्म, अपनी ज़मीन से जुड़ी हुई हकीकत, गहरे और तलस्पर्शी यथार्थ—बोध से जन्मी दायित्व—चेतना तथा आदमी का आदमी से और इस प्रकार करोड़ो—करोड़ आदमियों से सतत चलने वाला वार्तालाप है। अपनी बिकी हुई मेहनत, बेसहारा ज़िन्दगी की आकांक्षाएँ, सामाजिक शोषण—उत्पीड़न से उत्पन्न उलझनों से होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति—परिस्थिति की क्रिया—प्रतिक्रियात्मक संवेदनाएँ आदि को अपने में सम्मिलित करनेवाला विचार—वेदना—मण्डल, जब लोक—मुक्ति की नयी भावधारा से और सशक्त और भी संवेदनमय हो जाता है, तब जनवादी कविता का आविर्भाव होता है, उसमें महान 'मनुष्य—सत्य' होता है। चण्डीदास ने '''षुनह मानुश भाई शराब ऊपर मानुश षत्तो ताहार ऊपरे नाई' द्वारा जिस 'मनुष्य—सत्य' की घोषणा की है, उसका मूल अधिष्ठान यह सामान्यजन है।''[४] प्रतिबद्ध जनवादी कवि आम जनता का, उसके जीवन—सत्य का पक्षधर होता है और उसके सुख—दु:ख का सहभागी। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से सामान्य जन की बौद्धिक—सामाजिक—राजनैतिक मुक्ति को सहज एवम् आसान बनाता है।

जनवादी कविता का वास्तविक जीवन—सत्य वस्तुत: पारिभाषिक अर्थों में सर्वहाराओं का वास्तविक संसार कहा जा सकता है। यह कवि गाँव की तरल और अकुण्ठित बिरादरी का प्रेमी है। वे लोग जो किन्हीं कारणों से गाँव छोड़कर नगरों—महानगरों और उपनगरों की ओर चले गये हैं, इस कवि की निगाह उनका पीछा भी निरन्तर करती रहती है। उनके जीवन—संघर्ष को देखता है और उनके भविष्य के लिए कविता को जुटाता है। ज़रूरी नही कि जिसे गाँवों की, वहाँ के लोगों की, कल—कारखानों में काम करने वालों की तथ्यगत जानकारी हो, वह कविता लिखते समय उसका लाभ ले ही सकता हो। इसके लिए ज़रूरी है— वह लोक—संवेदना, सहृदयता और जुड़ाव जो कविता को प्रामाणिक बनाते हैं। जनवादी कविता इस रूप में बतौर फैशन नहीं ज़रूरत के तहत पैदा

हुई है। मात्र सिद्धान्तवादी आग्रहों के फलस्वरूप भी वह नहीं जन्मी है। कवि की भीतरी पीड़ा, अनुभव–प्रबलता और संवेदना के बलबूते पर उसका सोता फूटा है।

किसी भी युग का और किसी भी साहित्यकार का साहित्य अपने समय के सामाजिक यथार्थ और जीवन–सत्य से असमपृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता। हाँ, यह बात अलग है कि कोई साहित्यकार उसे सजग होकर अपने साहित्य में वाणी देता है, तो कोई उससे बचने के प्रयत्नों के बावजूद परोक्ष रूप में उसके प्रभाव का साक्षी बनता है। जनवादी कविता में प्रतिफलित सामाजिक जीवन–सत्य दो रूपों में दिखायी पड़ता है–

१. समाजिक यथार्थ के सामान्य रूपों का बिम्बन और
२. विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं के प्रति जनवादी कविता की प्रतिक्रियाएँ और उसमें उनकी गूँज।

एक ओर तो जनवादी कविता में समसामायिक यथार्थ के सामान्य रूपों को व्यापक अभिव्यक्ति मिली है और दूसरी ओर वह विशिष्ट समसामयिक स्थितियों के प्रति सर्वाधिक सजग कविता है। सामाजिक यथार्थ के इन सामान्य रूपों में विभिन्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों और उनके विभिन्न स्तरों के बिम्बन के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक संगठनों और इकाइयों–परिवार, ग्राम, नगर, राष्ट्र, राजनीतिक दल आदि का और इनसे सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं और संघर्षों का चित्रण भी आ जाता है।

जनवादी कविता में ग्राम्य–जीवन और किसान का मतलब देहात के छोटे किसानों और खेतिहर मज़दूरों से है– इनमें गाँवों के धोबी, लुहार, नाई, कुम्हार, हरिजन, पासी, मुसहर, धरिकार आदि शामिल हैं, जिनकी ज़िन्दगी की दु:खभरी दास्तान छोटे किसानों, खेतिहर मज़दूरों से भिन्न नहीं होती। इन कवियों ने अपनी कविता में ग्रामीण किसानों की गरीबी, अभाव, तवाही, कर्ज, भुखमरी, परेशानी और दमन–उत्पीड़न का बड़ा सजीव वर्णन किया है। चूँकि अधिकांश कवि इस देश के ग़रीब ग्रामों से सीधा जुड़ा है और उन्हीं में जीवन बीता रहा है इसलिए वह उन्हें ठीक से समझता है। धूमिल ने इस ग्रामीण परिवेश का वर्णन करते हुए लिखा है–

''मूत और गोबर की सारी गन्ध उठाये
हवा बैल के सूजे कंधे से टकराये
खाल उतारी हुई भेड़–सी
पसरी छाया नीम पेड़ की,
चीखों के दायरे समेटे
ये अकाल के चिह्न अकेले
मनहूसी के साथ खड़े हैं
खेतों में चाकू के ढेले
अब क्या हो–जैसी लाचारी
अन्दर ही अन्दर घुन कर दे वह बीमारी.....
चेहरा–चेहरा डर लटका है
घर–बाहर अवसाद है
लगता है यह गाँव नरक का
भोजपुरी अनुवाद है।''[५]

सामाजिक जटिलताओं ने व्यक्ति को अनेक दबावों में पीसकर फिल्टर्स की व्यवस्था में छिन्न–भिन्न किया है। गाँवों में बसने वाला हिन्दोस्तान द्विवेदी युग, छायावादी युग में फिल्मी ढंग से रंगीन दिखाया गया है। गाँवों का आदमी अमृत की तलाश में ज़हर पी रहा है, लेकिन आदर्शीकरण वाले भाववादी कवि उसकी वस्तुस्थिति का नक्शा दे नहीं पाये। गाँव के इतिहास में जीवन–मरण का चक्रव्यूह चलता रहा और शहरीकरण वाले 'बाबू' उससे कभी द्रवित नहीं हुए। सामाजिक रचना–गठन की अमानवीयता पर सत्ताधारी वर्ग का कभी ध्यान नहीं गया। भारतीय ग्रामीण निष्पंद कतारों में बसने वाले 'जीव' का अन्तर नहीं जानते हैं। 'मुसहर' जाति की स्थिति का वर्णन करता हुआ जनकवि लिखता है–

''नाम मुसहरवा है, कबनउ सहरवा ना,
कैसे बीते जिनगी हमार।
जेठ दुपहरिया में सोढ़िया चिराई करी
चलै पसिनवाँ के धार।।
बँहगी में बाँधि लेइ चललीं लकड़िया
आधे दाम माँगे दुतकर।

रहै के जगह नाहीं, जोतइ के ज़मीन कहाँ
कहैं देबै गाँव से निसार।
घरवा के नमवाँ पै एक ही मड़ैया में
ससुई—पतोहु परिवार।।
मेघा औ मगर, गोह, साँप, मूसखाई सब
करी गिलहरिया सिकार।
कुकुरा के साथ धाई जुठली पतरिया पै,
पेटवा है पपिया मड़ार।।''[६]

अभावों, पीड़ाओं, राननीतिक भ्रष्टाचार, अकाल एवं शोषण के नये—नये हथकण्डों से घिरा गाँव जन कवियों को बार—बार मथता है, जहाँ बिवाई—सी धरती फटी है, सभी ताल—पोखर सूख गये हैं और शीतलता देने वाले पेड़ झुलस गये हैं—

''उखड़ गये हैं झाड़ सब, उजड़ गया है बाग़।
जाने किसके दिन फिरे, फूटे किसके भाग।।
सहमी—सहमी पतियाँ, डरे—डरे हैं फूल।
पेड़ खड़े चुपचाप हैं, अकड़ रहे हैं शूल।।
धरती फटी बिवाई—सी, सूख गये हैं ताल।
झुलस गये हैं पेड़ सब, ऐसा पड़ा अकाल।।''[७]

जनवादी कविता में सामाजिक यथार्थ का क्षेत्र गाँवों तक सीमित नहीं है। ग्रामीण जीवन के यथार्थ—चित्रण के साथ उसने नागरिक जीवन के विभिन्न अंगों, रूपों और उसकी बिद्रूपताओं—असंगतियों को भी विस्तृत रूप से अभिव्यक्ति दी है। जिस प्रकार ग्राम्य—जीवन की धुरी किसान है, उसी प्रकार मज़दूर नागरिक जीवन का आधार है। आधुनिक औद्योगिक नगरों का सारा ढाँचा वास्तव में मज़दूर की हड्डियों पर ही खड़ा है—

''घाट, धर्मशाले, अदालतें
विद्यालय, वेश्यालय सारे
होटल, दफ़्तर, बूचड़खाने
मन्दिर, मस्जिद, हाट् सिनेमा
श्रमजीवी की उस हड्डी पर टिके हुए हैं।''[८]

और—

''जगत् के हम केवल कर्तार
हमीं पर अवलम्बित संसार
कला—कौशल खेती व्यापार
हवाईयान, रेल या तार
सभी के एक मात्र आधार
हमारे बिना नहीं उद्धार।''[९]

लेकिन आधुनिक सभ्याता का मूलधार, सारे वैभव—विलास का शिल्पी मज़दूर की ज़िन्दगी बड़ी ही दयनीय है। यांत्रिक परिस्थितियों की दुर्निवार विसरता में मज़दूर का चट्टानवत् साहस, आत्मघाती परवशता में रेत बन जाता है और मानवीय संवेदना की सारी धारा सूख जाती है—

''तीन शिफ्टों में बँटी हुई ज़िन्दगी के
हफ्ते—दर—हफ्ते चक्कर काटते
तीन प्रकार के खटने—सोने
और जीने के क्रम में
नून, तेल, लकड़ी के बिना
जलने वाली चिन्ताएँ
रसमाती घटाओं को जाती निगल
आत्मीयता की स्निग्ध मिट्टी को बना देती बंजर
घर में खड़ी हो जाती
रेत की अदृश्य दीवार
इसे तोड़ने के प्रयत्न में
वे स्वयं टूटकर बिखर जाते
रह जाता—मुखर एक रेतीला मौन
जो शब्द से अधिक चुभता है
शब्द से अधिक करकता है।।''[१०]

जनवादी कविता में स्त्री के विविध रूप दिखायी देते है। भारतीय स्त्री एक ओर तो सामंती और पूँजीवादी आर्थिकि परिस्थितियों के कारण शोषित वर्गों के पुरूष के साथ ही शोषण का शिकार बनती है और दूसरी ओर अपने परिवार के पुरूषों—पिता, भाई और पति के द्वारा अतिरिक्त रूप से शोषित या पद—दलित की जाती है। इस दूसरे पद—दलन से दलित स्त्री के कई मार्मिक चित्र जनवादी कविता में खींचे गये है। पुरूष स्त्री को 'देह' मात्र मानता है, जिसके प्रति उसके मन में न संवेदना है, न स्नेह है, न घृणा या तिरस्कार ही है—

''औरत: आँचल है
जैसा कि लोग कहते हैं
स्नेह है—
किन्तु मुझे लगता है—
इन दोनों से बढ़कर
औरत एक देह है।''[११]

स्त्री व्यावहारिक धरातल पर खड़ी होकर समर्पण करती है। स्वेच्छा से समर्पण करने पर उसे पछतावा, शोक या पश्चाताप नहीं होता—

''अनंत सागर में करती अभिसार
अनुद्विगन होकर निर्द्वन्द्व,
नहीं किया कभी कोई विचार
समर्पित होने पर
मन में नहीं पछतावा
अनेक, पश्चाताप की परिसीमा
कर जाती अतिक्रमण.....
व्यावहारिक धरातल पर टिकी
नहीं हुई व्याकुल
नहीं उद्विग्न
पुरूष—सदृश्य।''[१२]

जनवादी कवि ने दीनहीन शोषित स्त्री की कर्मठता का बड़ा सजीव वर्णन किया है। हर चौराहे के कोने पर दीन—हीन और मैली—मैली जो बैठी है, वह सृष्टि की जननी है, माँ है। हरे खेत की, हरी मेड़ पर, निर्भय मन की, कुन्दन—सी देदीप्यमान मूर्ति माँ की है। इसी प्रकार हर पनघट पर भरी गगरी खींचने वाली तन—मन की भोली भी माँ ही है—

''बड़ी भोर से
चली काम पर
जो झटपट—सी
व्याकुल मन—सी
तीव्र पवन—सी.....
धरे शीश पर गारा—माटी
बेझा मटकी
थकती—सी जो
रूकती—सी जो.....
हर मालिक के दरवाजे पर
खड़ी हुई जों
कम्पित मन—सी
हत जीवन—सी.....
भटक रही जो
पंथ—पंथ पर
हाथ पसारे
मन को मारे
तन के गारे
तुम्हें पता है
मेरी माँ है।''[१३]

पूँजीवाद व्यवस्था ने समूचे समाज को तीन भागों में विभाजित किया है—

१. बुर्जुआ वर्ग
२. मध्यवर्ग अर्थात् मिडल क्लास और
३. निम्नवर्ग।

जनवादी कविता में तीनों वर्गों का सजीव चित्रण है। बुर्जुआ वर्ग शोषक—शासक रूप में वर्णित है, तो मध्यवर्ग व निम्नवर्ग अपने वास्तविक रूप में चित्रित है। जीवन के सारे उतार—चढ़ाव, सुख—दुःख इन्हीं वर्गों के दर्शनीय हैं। जनवादी कविता मध्यवर्ग का 'एक्सरे' है, जिसे देखकर उसकी स्थिति, गतिहीनता, जर्जरता, विकृतियों और विडम्बनाओं को बखूबी समझा जा सकता है। जनवादी कविता में आस्था और अनास्था, सामाजिकता और असामाजिकता, न्याय और अन्याय, हिंसा और अहिंसा, ईमानदारी और बेईमानी, जिजीविषा एवं व्यामोह आदि प्रायः सभी मध्यवर्गीय जीवन के सभ्य और असभ्य, सुसंस्कृत और असंस्कृत अंगो का चित्रण हुआ है। यह चित्रण ऐसी ठोस यथार्थता के धरातल पर हुआ है कि वह समूची समकालीन सामाजिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। जनवादी कविता बड़ी प्रामाणिकता के साथ मध्यवर्ग का असली चेहरा स्पष्ट कर देती है।

मध्यवर्ग शोषक भी है और शोषित भी। उच्च वर्ग तथा निम्न—मध्य वर्ग का शोषण करते हैं और निम्न—मध्यवर्ग अवसर आने पर निम्नवर्ग का शोषण करता है। परस्पर शोषण की क्रिया—प्रतिक्रिया चलती रहती है। एक ही वर्ग के लोग भी परस्पर शोषण करने का प्रयत्न करते हैं। धन—लालसा ही मध्यवर्ग को शोषण में प्रवृत्त करती है—

''बाबू का जनता पर काबू
वह उसको नाच नचाता है
जब तक न जेब भर जाती है,
कागज को खूब दबाता है।
वह चाहे तो वेतन रोके,
चाहे तो भत्ता दिलवा दे।।

बुद्धू अफ़सर की चाहे तो,
मिट्टी में इज्जत मिलवा दे।
उसके हैं हाथ बड़े लम्बे,
बिल में से मास खींच लेते।।
फिर तो चाँदी ही चाँदी है,
यदि अफ़सर आँखमीच लेते।।''[१४]

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जनवादी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समकालीन सामाजिक जीवन—सत्य को बड़ी प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

संदर्भ :

१. सिंह इन्द्र बहादुर (डॉ.), जनवादी समीक्षा—दृष्टि और जनवादी रचनाकार, उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९०, पृ. ०७
२. मिश्र शिवकुमार (डॉ.), आधुनिक कविता और युग—दृष्टि, विद्यामन्दिर, ब्रह्मनाल, वाराणसी, प्र. सं. १९९६, पृ. विज्ञप्ति — ३
३. सिंह इन्द्र बहादुर (डॉ.), जनवादी समीक्षा—दृष्टि और जनवादी रचनाकार, उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९०, पृ. १३—१४
४. सिंह सुरेश, जनवादी कविता : संवेदना और शिल्प, उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९०, पृ. १३—१४
५. सिंह बच्चन (सं) एकत्र, धूतिल की कविता 'गाँव', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, सं. १९८९, पृ. १३३—१३४
६. पाठक विनय कुमार, आंबेडकर की सौन्दर्य, शास्त्र और दलित आदिवासी — जनजातिय विमर्श, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं, २०१२, पृ. २७७
७. सिंह रविनाथ, देखी गयी न आग, विनय प्रकाशन अहमदाबाद, प्र.सं. २००३, पृ. ३९
८. अग्रवाल केदारनाथ युग की गंगा, 'कानपुर' कवितास से, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. १९७१, पृ. २८
९. वही, 'त्रिशुल' कविता से, पृ. ३५
१०. सिंह इन्द्र बहादुर, इतिहास का नया पथ, उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९३, पृ. २५
११. पाण्डेय सुदाम, 'धुमिल', कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पैपरबैक संस्करण, १९९०, पृ. ५०
१२. सिंह इन्द्र बहादुर, इतिहास का नया पथ, उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९३, पृ. ३९
१३. पंडा बंशीधर, तुम्हें पता है, मेरी माँ हैं, सरस्वती प्रकाशन, नायगांव, दादर (पूर्व), मुंबई, प्र.सं. २००१, पृ. ३१
१४. भंडारी गणपतिचन्द्र, रक्तदीप, 'है कौन रा ट्र का निर्माता' कविता से उर्मिला प्रकाशन, विक्रोली (पूर्व), मुंबई, प्र. सं. १९९२, पृ. ७३